जून १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

पुक्कुसाति (३)

गतांक से आगे...

हुई मित्रता फलवती

नगर के बाहर भार्गव कुम्भकार (कुम्हार) का एक छोटा सा मकान। कुम्भकार को बर्तन, भांडे बनाने के लिए बहुत सी मट्टी की आवश्यकता होती है, अतः नगर के बाहर जहां ऐसी सुविधा हो, वहीं उसका निवास होना स्वाभाविक है। हम नहीं जानते कि भार्गव इस कुम्भकार का नाम है अथवा गोत्र, जिसके कारण वह इस सम्बोधन से पुकारा जाता है। हो सकता है जैसे आज कुम्भकार को प्रजापति के नाम से पुकारते हैं, उसी प्रकार उन दिनों भार्गव नाम से पुकारते हों। क्योंकि पुरातन साहित्य में हमें एक से अधिक भार्गव कुम्भकारों के उल्लेख मिलते हैं।

जो भी हो, यह भार्गव कुम्हार अत्यंत श्रद्धालु है। साधु-संतों की सेवा टहल और सत्संग में रुचि रखता है। उनकी सुख सुविधा के लिए अपने घर के समीप एक विश्रामशाला बना रखी है, जो कि कुम्भकारशाला के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें यात्री साधु-संन्यासी, एक दो दिन के लिए टिकते रहते हैं। कभी भगवान बुद्ध और कभी सारिपुत्र आदि, उनके शिष्य भी रैन बसेरे के लिए इस कुम्भकार की विश्रामशाला में रुके हैं। आज भी भगवान बुद्ध सूरज ढलने के बाद इस कुम्भकार के पास आए हैं और उससे पूछते हैं – "भार्गव कुम्भकार, मैं तुम्हारी अतिथिशाला में रात बिताऊं? तुम्हें बोझ तो नहीं लगेगा?"

"नहीं, भन्ते भगवान, मेरे लिए तो यह असीम पुण्य की बात होगी। कुंभकारशाला का कक्ष बहुत बड़ा है। उसमें एक साथ एक से अधिक लोग आराम से टिक सकते हैं। परन्तु अभी कुछ देर पहले मैंने एक श्रमण को वहां टिकने की अनुमति दे दी है। उसे पूछ लें। उसे एतराज न हो तो भगवान सुखपूर्वक रहें।"

भगवान कुंभकारशाला में गए। देखा, वहां फटे चीवर पहने एक श्रमण बैठा है। गौर वर्ण है, उन्नत ललाट है, बड़ी आंखे हैं, लंबा नाक है। सिर और मूंछ दाढ़ी के कटे हुए बाल, दो-दो अंगुल बढ़े हुए हैं। योद्धाओं का सा चौड़ा सीना है। सबल सुडौल हाथ-पांव हैं। सब मिलाकर बड़ा भव्य व्यक्तित्व है। भगवान उसे देखकर मुस्कराए। उन्होंने पूछा, "भिक्षु इस कक्ष में मैं तुम्हारे साथ एक रात गुजार लूं? तम्हें बोझ तो नहीं लगेगा?"

"नहीं, आयुष्मान्, जरा भी नहीं। कुम्भकारशाला का यह कक्ष बहुत बड़ा है। बड़ी खुशी से यहां रात बिताओ। मुझे तो पाल्थी मारकर बैठने भर का स्थान चाहिए। तुम यहां यथासुख रहो।"

तृण का आसन बिछाकर भगवान एक ओर बैठ गए और ध्यानमग्न हो गए। पूर्वागत भिक्षु भी ध्यान में बैठ गया और शीघ्र ही चौथी ध्यान-समापत्ति में समाधिस्थ हो गया।

शनैः शनैः रात बीतती गयी। रात्रि का प्रथम याम बीता, द्वितीय याम बीता, अब तीसरा बीत रहा था। पूर्णिमा थी। आकाश सारी रात चंद्रप्रभा से प्रभासित रहा। धरती के आंगन पर चांदनी छिटकी रही। खुली खिड़कियों से चांदनी का प्रकाश कक्ष में भी प्रवेश पा रहा था। भगवान बुद्ध और भिक्षु को चंद्र-किरणें स्पर्श कर रही थीं। भगवान तो बोधिरश्मि से स्वयं प्रभाकर थे ही, भिक्षु का चेहरा भी ध्यान समापत्ति की प्रभा से प्रदीप्त था। चांद की शुभ्र ज्योत्सना उन दोनों के चेहरों को और अधिक उजला कर रही थी। भिक्षु देर तक बिना हिले-डुले अधिष्ठान आसन में बैठा रहा। तीसरे याम के दौरान उसने आंखे खोली! भगवान ने उसकी ओर देखा और मुस्कराये। उन्होंने पूछा –

"भिक्षु, तुम किस पर आश्रित होकर गृहत्यागी हुए हो? कौन तुम्हारा शास्ता है, आचार्य है? किसके द्वारा उपदेशित धर्म तुम्हें रुचिकर है?"

भिक्षु ने उत्तर दिया, –"आयुष्मान् लोक में सम्यक्सम्बुद्ध उत्पन्न हुए हैं, जिनकी कीर्ति चारों ओर फैली है। मैं उन्हीं शाक्यमुनि भगवान गौतम बुद्ध का आश्रय लेकर घर से बेघर हुआ हूं। वही मेरे शास्ता हैं। उन्हीं का उपदेशित धर्म मुझे रुचिकर लगता है।"

भगवान फिर मुस्कराये। उन्होंने पूछा, – "भिक्षु, क्या तुमने अपने शास्ता को कभी देखा है? क्या देख लो तो पहचान पाओगे?"

"नहीं, आयुष्मान् नहीं पहचान पाऊंगा। मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।"

"इस समय तुम्हारे शास्ता कहां हैं?"

"यहां आने पर पता चला कि वे श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे हैं। रास्ते में मैं जेतवन विहार के सामने से गुजरा, पर तब तो समझता था कि उन्हें मगध में सम्बोधि मिली है, अतः मगध में ही विहार कर रहे हैं। अब उनसे मिलने के लिए पुनः ४५ योजन श्रावस्ती की ओर लौटना होगा।"

भगवान फिर मुस्कराए। उन्होंने अपने बोधिचित्त से देखा कि भिक्षु का आयुष्य बहुत थोड़ा बचा है। सूर्योदय के कुछ समय बाद उसकी शरीर-च्युति हो जायेगी। मेरे निमित्त ही यह प्रव्रजित हुआ है। बहुत योग्य पात्र है। अनेक जन्मों की पुण्य पारमिताओं का धनी है। विपश्यना सिखायी जाए तो अभी विमुक्ति की ऊंची अवस्थाएं प्राप्त कर लेगा। अतः उन्होंने बड़े करुण चित्त से कहा, –

"तो भिक्षु ध्यान लगाकर सुनो! मैं तुझे धरम देशना देता हूं।"

ऐसा आकर्षण था भगवान की करुणासिक्त वाणी में कि भिक्षु ना न कर सका। उसने कहा, "बहुत ठीक आयुष्मान्!" और दत्तचित्त होकर उनकी कल्याणी वाणी सुनने लगा।

पूर्व जन्मों के अभ्यास के कारण स्वर्णपत्र पर आनापान की साधना का वर्णन मात्र पढ़कर वह स्वतः चौथी ध्यान समापत्ति की अनुभूति तक पहुँच चुका था। भगवान ने अब उसे धातुओं के विभंग को समझाते हुए विपश्यना की गहराइयों में उतारा।

पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश, –ये पांच भौतिक तत्व हैं और विज्ञान, यह एक मानसिक तत्व। इन छह तत्वों का समुच्चय ही मनुष्य है। इन छहों को विभाजित करके, इनकी धातु याने इनके धर्म-स्वभाव को अनुभूतियों के स्तर पर जान लेना धातु विभंग है। इन छह तत्वों के अतिरिक्त आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और विज्ञान (मानस) की छह इंद्रियां और इनके अपने-अपने विषयों के संस्पर्श से उत्पन्न होनेवाली सुखद-दुखद अथवा असुखद-अदुखद संवेदनाओं की १८ प्रकार की अनुभूतियों में विचरण करते रहनेवाले स्वभाव को विभाजित कर-करके देख लेना, इन्हें **मैं, मेरा और मेरी आत्मा** न मानकर मिथ्या अहं की भ्रम-भ्रांतिजनक मरीचिका से मुक्त होना, मिथ्या मान्यताओं की गुलामी से छुटकारा पाना, यही विपश्यना की विभंग साधना है। इस साधना द्वारा निरंतर अनित्यबोधिनी संप्रज्ञा में सतत अधिष्ठित रहना, याने स्थितप्रज्ञ बने रहना, इंद्रिय जगत के अनित्य और इंद्रियातीत के नित्य स्वभाव वाली सच्चाइयों को स्वानुभूति से जानकर सत्य में सतत अधिष्ठित रहना, मिथ्या अहंभाव से उत्पन्न राग-द्वेष और मोह जैसे विकारों के त्याग में सतत अधिष्ठित रहना और विकारविमुक्ति द्वारा प्राप्त चित्त की शांति में अधिष्ठित रहना, यही धातुविभंग उपदेश के चार प्रमुख उद्देश्य हैं।

भगवान जैसे-जैसे इस उपदेश की बारीकियों को समझाते गए

वैसे-वैसे पुक्कुसाति लाकीय ध्यान को संप्रज्ञान के साथ जोड़कर लोकोत्तर ध्यानों में बदलता गया और अब उसकी समाधि केवल ध्यानसमापत्तियों तक ही सीमित नहीं रही। सम्प्रज्ञान की विपश्यना द्वारा अधोगति के सम्पूर्ण संस्कारों का क्षय करके उसने पहले स्रोतापत्ति की निर्वाणिक फल-समापत्ति को अनुभूति पर उतारा और तदनन्तर सगदागामी की फल-समापत्ति को।

भगवान समझाए जा रहे थे और साथ-साथ मैत्री धातु, धर्मधातु और निर्वाणधातु से सारे वातावरण को आप्लावित किए जा रहे थे। श्रद्धालु पुक्कुसाति केवल सुनता ही नहीं जा रहा था, भीतर ही भीतर विपश्यना प्रज्ञा द्वारा घनीभूत सच्चाइयों का छेदन-भेदन करता हुआ बाकी बचे कर्मसंस्कारों का उच्छेदन भी करता जा रहा था।

रजनीकांत निशाकर अपनी रजत रश्मियां समेटता हुआ पश्चिमी क्षितिज की ओर अस्त हो रहा था। भुवन भास्कर अपनी स्वर्ण-रश्मियों को विकीर्ण करता हुआ पूर्वी क्षितिज से उदय हो रहा था। इसी समय पुक्कुसाति भगवान की महाकारुणिक धर्मतरंगों का संबल प्राप्त करता हुआ, विपश्यना की सूक्ष्म गहराइयों की ओर अग्रसर हो रहा था। यकायक उसे चौथे ध्यान की समापत्ति के साथ-साथ प्रथम निरोध समापत्ति की निर्वाणिक अनुभूति हुई। वह अनागामी-फल लाभी हुआ।

इस निरोधसमापत्ति से उठा तो कृतज्ञता विभोर हो गया। ऐसी मुक्तिदायिनी विपश्यना भगवान बुद्ध के अतिरिक्त और कोई नहीं सिखा सकता।अवश्य यह भगवान बुद्ध ही है। यह विचार मन में आते ही उसके मुँह से हर्ष के उद्गार निकल पड़े।

"अहो! मैंने अपना शास्ता पा लिया, सुगत पा लिया, सम्यक्सम्बुद्ध पा लिया।" यह कहते हुए पुक्कुसाति ने अपना सिर भगवान के चरणों में झुका दिया। फिर दाहिने कंधे को खुला छोड़कर अपने उत्तरासंग को याने ऊर्ध्व वस्त्र को बाएं कंधे पर रखते हुए (यह उन दिनों का सम्मान प्रदर्शन था), हाथ जोड़कर बोला –

"भन्ते भगवान! अनजाने में मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ। मैं अपनी अज्ञान अवस्था में, मूढ़ अवस्था में आपको पहचान नहीं पाया। इसलिए आपको आयुष्मान् शब्द से सम्बोधित करके मैंने अत्यंत अकुशल कर्म किया। (पद अथवा उम्र में अपने से छोटों के लिए आयुष्मान् शब्द प्रयुक्त हुआ करता था) भगवान मेरे इस अपराध को क्षमा करें।भविष्य में मुझसे ऐसी भूल नहीं होगी।"

"भिक्षु अनजाने में की हुई अपनी भूल तुमने स्वीकारी है। इसका उचित प्रतिकार किया है। आर्य धर्म-विनय में यह प्रगति का लक्षण है, जबकि कोई अपनी भूल स्वीकारता है, उसका प्रतिकार करता है और भविष्य में न करने का संकल्प करता है।"

"भगवान, मुझे आप से उपसंपदा मिले।"

"भिक्षु, क्या तुम्हारे पास परिपूर्ण पात्र-चीवर है?"

"नहीं भन्ते, परिपूर्ण नहीं है।"

"भिक्षु, अपूर्ण पात्र-चीवर वाले को तथागत उपसंपदा नहीं देते।"

तब आयुष्मान् पुक्कुसाति भगवान के वचन का अभिनंदन कर, आसन से उठा और उनका अभिवादन कर, उनकी प्रदक्षिणा की और पात्र-चीवर की खोज में नगर की ओर चल पड़ा।

xxx xxx xxx

सूर्योदय होते ही नगरद्वार खुले। नगर के कुछएक नागरिक और भिक्षु बाहर आए तो भार्गव कुम्हार की अतिथिशाला में अप्रत्याशित रूप से भगवान को बैठे देखा। उन्होंने भगवान का सादर अभिवादन किया।कुछ लोग दौड़े हुए महाराज बिम्बिसार के पास पहुँचे। वह भी शीघ्रतापूर्वक भगवान की सेवा में आ गया। भगवान को पंचांग प्रणाम कर भार्गव कुम्हार की अतिथिशाला में बैठ गया।

इतने में सूचना आयी कि पात्र-चीवर की खोज में निकला हुआ भिक्षु एक दुर्घटना में मृत्यु को प्राप्त हो गया है।

भगवान ने बताया कि यह व्यक्ति गांधारनरेश था, जो कि अपने मित्र का धर्मसंदेश पाकर, राजपाट त्यागकर प्रव्रजित होने मगध चला आया था। पुक्कुसाति समझदार था। वह परम सत्यान्वेषी था। शुद्ध धर्म को जैसे-जैसे सुनता गया, वैसे-वैसे स्थूल से सूक्ष्म सत्यों की ओर अग्रसर होता हुआ, मुक्ति की ओर बढ़ता चला गया। धर्म को समझाने और धारण करने में उसमें कोई हेठी नहीं दिखाई दी। कोई अड़ियलपन नहीं दिखाई दिया। आज की रात ही उसने विपश्यना साधना द्वारा अनागामी फल प्राप्त किया,जिससे उसके सारे अवरभागीय संयोजन-बंधन टूट गए। अब वह ओपपातिक ब्रह्मलोक में जन्मा है। वहां विपश्यना करते हुए अर्हंत फल प्राप्त कर लेगा और वहीं शरीर त्यागने पर परिनिर्वाणलाभी होकर समस्त लोकों के भवभ्रमण से सर्वथा विमुक्त हो जायेगा।

बिम्बिसार अपने अनदेखे मित्र की मृत्यु के संवाद से दुःखी तो हुआ, पर शीघ्र ही उसका यह दुःख मोद में पलट गया, जबकि उसने यह सुना कि उसका मित्र अनागामी फल प्राप्त कर मृत्यु को प्राप्त हुआ है। उसे लगा कि उसका धर्म-संदेश बहुत ही योग्य व्यक्ति तक पहुँचा और वह भगवान के और विपश्यना के संपर्क में आकर यथोचित लाभान्वित हुआ।

बिम्बिसार ने भगवान की वाणी सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की और तीन बार साधु,साधु,साधु कहकर उनके चरणों में नमन किया।

सचमुच उसकी धर्म-मैत्री सफल हुई, सार्थक हुई। उसके मित्र का मंगल हुआ, कल्याण हुआ। ऐसा मंगल-कल्याण सब का हो!

कल्याणमित्र,
स.ना.गो.